मूल लेखक :
कुलबीर बडेसरो
(98190 77617 मुंबई)

अनुवाद :
भूपिन्दर कौर प्रीत
श्री मुक्तसर साहिब
(98141 77954)

बराबर का आलिंगन – अजीत कौर

कहा जाता है कि ''किसी चीज़ को शिद्दत से चाहो तो पूरी कायनात उससे मिलाने की कोशिश में जुट जाती है।'' यह चमत्कार घटित होता मैंने देखा, नई दिल्ली 'पंजाबी साहित्य सभा' की 33वीं 'धूप की महफिल' 11 फरवरी 2024 को, जब मैं अपनी बेहद पसंदीदा लेखिका अजीत कौर को मिली। उसे मिलने की कई वर्षों से तड़प थी। जब भी कभी मैं दिल्ली जाती, (तब से जब मैं पंजाब में रहती थी), कभी किसी काम से दिल्ली आना पड़ता तो अजीत कौर की याद आती। तब भी मैं सोचती थी, ''मैं उस शहर में हूँ, जिस में अजीत कौर रहती है जो कलम की जादूगरनी है, जो शब्दों से खेलना जानती है, जिसका लिखा हुआ पढ़ कर कई–कई दिन तुम्हारे सर पर उस लेखन का जादू रहता है, तुम उस जादू में अलमस्त, मस्ती की हालत में घूमते रहते हो..... उस अजीत कौर के श्वास इस शहर की आबो–हवा में घुले हुए हैं..... मैं एक ही घूंट बना लूँ इस आबो–हवा का..... काश! कहीं मैं उससे एक बार मिल लूँ..... उसका वह हाथ अपने हाथ में लेकर चूम सकूँ, जिससे वह महान, अद्भुत कथा रस से भरपूर, आलौकिक लेखन करती हैं..... कमाल करती हैं....।

11 फरवरी 2024 को नवयुग फार्म महरौली में, बसंत ही थोड़ी नम्र–नम्र धूप में जब 'धूप की महफिल' सजी तो जिस में मुझे साहित्यक और सांस्कृतिक सेवाओं के बदले सम्मानित करना था। स्टेज पर मुख्य मेहमान एम.पी. श्री त्रिलोचन सिंह जी, डॉ. रेणुका सिंह (अध्यक्ष पंजाबी साहित्य सभा), प्रधान जी गुलजार सिंह संधु जी, महासचिव डॉ. कुलजीत शैली जी सुशोभित थे और मंच–संचालन कर रहे थे श्री बलबीर माधोपुरी जी और पंडाल में दूर–दूर से आये लगभग ढाई सौ लेखक और मेहमान मौजूद थे सम्मानित होने वाली तीन और हस्तीयां थी, श्री निर्मल अर्पण जी, श्री अमरीक गिल जी और डॉ. अमर ज्योति (जो किसी कारणवश पहुँच नहीं सके थे)

प्रोग्राम शुरू हो चुका था। तभी पंडाल में कुछ हलचल हुई, मंच पर बैठे सभी महान सज्जन भी सामने चेतन होकर एक ही बिंदू में देखने लगे चेतन होकर। मैंने भी मुड़ कर देखा तो क्या देखती हूँ, आँखों पर यकीन नहीं हो रहा था, मेरे दिल की धड़कन तेज़ हो गई.. ...देखा सामने अजीत कौर आ रही थी, अपनी होनहार, बेहद गुणवान और चित्रकार बड़ी बेटी अर्पणा के साथ। वह अजीत कौर आ रही थी, जिसे मैंने 1994 में चिट्ठी लिखी थी। जिसमें मैंने लिखा था कि ''मैंने कनेडा जाने के लिए जहाज़ पकड़ना था, मुझे आप बहुत याद आते रहे, काश! मैं कभी आपको मिल सकूँ..... पर आप तो बड़ी लेखिका हैं और मैं छोटी..... अजीत कौर ने उत्तर में जो ख़त मुझे लिखा, मैं वर्षों तक अपने पास संभाल–संभाल रखती रही। वह काले रंग की स्याही से मोटे–मोटे शब्दों में लिखा था, ''बड़े छोटे की बात नहीं, आलिंगन तो बराबर का ही होता है न....।''

वर्षों बाद जब कई बार दिल्ली जाना, पन्द्रह में, सोलह में, कभी शूटिंग के लिए, कभी साहित्यक सरगर्मीयों के लिए, जैसे दो हजार अठारह में 'पंजाबी साहित्य सभा' और दिल्ली यूनिवर्सिटी के पंजाबी विभाग की ओर से, फिर दो हजार उन्नीस में डॉ. गुरभेज सिंह ने दिल्ली पंजाबी कल्चरल मेले में बुलाया..... मैं जान–पहचान वाले लेखकों की मिन्नत करती रही कि ''कोई मुझे अजीत कौर से मिलवा सकता है?''

''नहीं अब वह किसी को नहीं मिलती।''

''कहीं नहीं आती जाती।''

किसी का फोन नहीं उठाती।''

''अब तो मुश्किल ही लगता है।''

परंतु फिर भी मैं शिद्दत से चाहती रही कि कभी उनसे मिल सकूँ..... कभी.....!

और 11 फरवरी दो हजार चौबीस की उस दोपहर को वह सामने से आ रही थी।

उन्हें मेरे वाली पहली लाईन के बराबर वाली पहली लाईन में सबसे आगे बैठाया गया। कार्यक्रम आगे चला। जब मेरी बारी आई, मैं स्टेज पर गई..... खुशी के पल आये..... एक सम्मान पत्र, मोमैंटो, शाल और नकद राशि से आदरणीय हस्तीयों ने मुझे सम्मानित किया। डॉ. विनीता ने मेरा सम्मान पत्र मंच से पढ़ कर सुनाया, यह भी मेरे लिए सम्मान वाली बात थी। मुझे माईक दिया गया, मैंने सब का धन्यवाद करने के बाद कहा कि आज तो मेरी खुशी

दुगनी हो गई हे, क्योंकि मेरे सामने मेरी पसंदीदा लेखिका अजीत कौर बैठी है। अजीत कौर ने यह सुनते ही मेरी ओर बाँहें खोल दी और मैं सब कुछ छोड़ कर भाग कर उनके गले से लग गई। बराबर के आलिंगन की बात सच हो गई..... वो पल इतने बेशकीमती थे, जो सदा मेरे दिल में महफूज़ रहेंगे। जैसे सिप्पी में मोती रहता है।

कार्यक्रम खत्म होने से लेकर अजीत कौर के वापस जाने तक लगभग डेढ़ घंटा मैं अजीत कौर के नजदीक से नहीं हटी..... बड़ी कोशिशें की गई कि मुझे वहां से उठाया जाये पर मैं नहीं उठी..... हार कर उन्होंने मेरा खाना भी वहीं भिजवा दिया..... यह समय वापिस कहां आना था? मैं उन्हें जी भर कर देख लेना चाहती थी– उनके अस्तित्व को अपने अस्तित्व में जज़ब कर लेना चाहती थी..... उनकी बातें सुनना चाहती थी..... आज कायनात ने मुझे उनसे मिलाया था..... मैं उस मुलाकात का एक पल भी गवांना नहीं चाहती थी....। वह नब्बे वर्षों की चेतन लेखिका जो पहले स्टेज पर बोली थी.... फिर बड़ी देर से भीड़ में खड़े एक वेटर को नोटिस करती..... उसे पास बुला कर उसका नाम पता पूछती है.....मैं हैरान रह गई..... इतनी चेतनता..... इतनी सुधि.....? कि आती–जाती भीड़ में उन्होंने उस बंदे को नोटिस कर लिया, जो बड़ी देर से दूर खड़ा अजीत कौर को देख रहा था।

कुछ तो है इस औरत में! नहीं बहुत कुछ है इस औरत में..... यह कोई आम औरत थोड़ा है, यह तो ईश्वर की बनाई हुई कोई खास इंसान है, जिस की कलम में अथाह शक्ति है, तिलस्म है, वह खुद भी मुझे उस दिन एक खास शक्ति और तिलास्म का रूप लगी। एक बहुत प्यारी, मोहब्बत करने वाली रूह, जिसके सीने में लोकाई के लिए प्यार है, दर्द है..... जिस दुनिया के किसी कोने में हो रही कोई भी बेइंसाफी, कोई भी जंग, मज़लूमों पर होती हिंसा, किसी भी बेसहारा जीव की आँख से गिरा एक आँसू भी उन्हें बेचैन कर जाता है....। 'लंदन कच्चे रंगों का शहर' में वह लिखती हैं, ''पहली बार अैटमी बंब चलाने के बाद जब पता चल गया कि बंब इतनी तेजी से तबाही कर सकता है, तो बेफिक्र बसते हिरोशिमा पर, सोते हुए लोगों के सिरों पर दूसरा बंब फेंका गया..... अरबों–खरबों डालर इस दौड़ में यानि मौत के ढेर को बड़ा करने के लिए खर्च हो रहे हैं..... हर वर्ष पैंतीस वर्षों से'' (पन्ना 28)

जंग के विरूद्ध अमन की गहरी संवेदना उनके हर दिन के फिक्र को ज़ाहिर करती है, चाहे वो वियतनाम की जंग हो, अफ्रीका, लेबनान, कोरिया, बंगला देश, इज़राईल, आयरलैंड

या और किसी देश की ।इन जंगों के राजसी विशलेषण करती मनुष्यता और आर्थिकता को लगती चोट और इस के पीछे की राजसी सत्ता के बारे में फिक्र और नज़रीया उसकी बुद्धी, विवेक, ज्ञान और प्रबुद्ध चिंतक होने का सबूत पेश करता है। उनके अपने देश भारत में भी जब–जब संकट आया – चाहे वह 1975 में लगी एमरजैंसी हो या 1984 जून में पंजाब संकट हो और फिर नवंबर 84 में हुए दिल्ली दंगे हों, अजीत कौर कभी चुपचाप अंदर नहीं बैठीं, बल्कि उन्होंने इन संकटों में दोहरी भूमिका निभाई। एक तो इन घटनाओं के खिलाफ लिखा और दूसरा खुद बाहर निकल–निकल कर लोगों के साथ खड़े होना। एमरजैंसी के मुद्दे पर जब बहुत से लेखकों ने इस के हक़ में हस्ताक्षर किये, अजीत कौर एक निडर लेखिका है, जिन्होंने इस के विरूद्ध आवाज उठाई। फिर 'साका नीला तारा' के समय खालिस्तानियों के खिलाफ भी बोली और सरकार के इस हमले के खिलाफ उनके लिखे साहित्य का मकसद लोगों को आपस में जोड़ना था। आतंकवाद के खिलाफ वह लिखती हैं कि ''दंगाईयों की कोई जाति नहीं होती, कोई धर्म नहीं होता है तो दंगे करना आतंक फैलाना.....''। वह लोगों को चेतन करने की कोशिश करती थी कि यह लड़ाई हिंदू सिक्खों की लड़ाई नहीं है, यह दंगाईयों की नीति की लड़ाई है। नवंबर 1984 में दिल्ली दंगों के समय उन्होंने 'नवंबर चुरासी' लिखा। उससे पहले जून 84 में उन्होंने 'लहू के चुबच्चे' लिखा जो उस समय 'आरसी' में छपा। सिर्फ लिखना ही नहीं नवंबर 84 के दिल्ली दंगों के समय वह महीना भर कैंपों में जा–जाकर जख़्मीयों की मरहम–पट्टी करती रहीं। उनका दुख–दर्द सुनती रही, उन्हें गले से लगाती रही।

एक बुजुर्ग सरदार जिसकी पगड़ी इन दंगों में उतर कर पता नहीं क्या गुम हो गई थी, जो कैंप में नंगे सर बैठा था, सिर निवा कर, खामोश! अजीत कौर जब उसे ले जा कर एक नयीं सफेद पगड़ी देती हैं तो यह मंजर पढ़ कर कलेजा मूँह को आता है। ''कुछ मिनट तो वह पगड़ी की ओर देखते रहे, फिर उन्होंने मेरी ओर देखा। पता नहीं उन नज़रों में क्या था कि वह गर्म–गर्म सलाखों की तरह मेरे कलेजे में उतर गई। उन्होंने कांपते हाथों से पगड़ी पकड़ ली। तह खोली। लंबा कर उसकी चौड़ाई को अपनी मुट्ठी में इक्कठा किया और कांपते हाथों से सिर पर लपेटने लगे। एक के बाद एक तह। पगड़ी बाँध कर उन्होंने मेरी ओर देखा,

उनकी आँखों में से दो मैले से आँसू उनकी गालों की झुर्रियों में से बहते हुए दाड़ी के बालों में गुम हो गये थे।'' (नवंबर 84, पन्ना 28)

वह अपने कहानी–संग्रह 'ना मारो' और 'कसाईवाड़ा' में भी लोगों के दर्द की बात करती हैं। उन्होंने अपने ज्यादातर साहित्य में लोगों को एकता, सहज और साकारात्मक सोच दी। जब वह निज़ाम पालिटिक्स की चालाकियां, चालें, गलत नीतियां और भ्रष्टाचार के विरूद्ध खुल कर लिखती हैं तो लगता है कि वह कितनी सुचेत और जागरूक लेखिका है, उनकी कलम सच की आग बरसाती है, तब भी जब खतरा सर पर मंडरा रहा हो, चाहे वह मौजूदा सरकारों का हो या सिरफिरों का.....। ऐसी बेबाक, बेलाग लेखिका मनुष्य की वेदना का बिंब बनती हैं वह सिर्फ मनुष्यता को ही बचाना नहीं चाहती बल्कि वातावरण के चौगिरदे को बचाना जानती हैं, पता नहीं कितने पेड़ उसने कटने से बचाये, हर यत्न करके, अपने रसूख कारण और अपनी नेक नीति कारण।

उन तमाम जज़्बों को उन्होंने शब्दों के जरिये पाठकों के सामने रखा, जो सीनों में धड़कते तो हैं, मन को घायल कर पागल भी करते रहते हैं, परंतु कोई आकार धारण नहीं करते। पर अजीत कौर ने शब्दों के जरिये उन जज़्बों को तुम्हारे सामने ला खड़ा किया, गुस्से से, जज़्बे के साथ, वेग से शक्तिशाली बना कर।

उसने प्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजसी सरोकारों के प्रति चेतन हो कर मानवी भावनाओं और मनुष्यता के संबंधों प्रति एक संवेदना से लिखा, एक शिद्दत के साथ, एक कलात्मक हुनर के साथ। उनके दस से ज्यादा कहानी–संग्रह और चार नावलों के बिना जो सबसे अधिक पाठकों को वश में करने में सफल हुए, वह हैं, उनकी दो शाहकार आत्मकथायें 'खानाबदोश औरत' और 'कूड़ा–कबाड़ा'। इन आत्मकथाओं में जो अविश्वास,टूंटन, रिश्तों के कल्त, जीवन के उतार–चढ़ाव, दरपेश समस्याएँ जीने की और अपने अस्तित्व को बचाने की जंग और जद्दो–जहद, जिंदगी की कड़वी सचाईयों को इस सूक्ष्मता और संवेदना के साथ ब्यान किया है कि पिछले पच्चास साल से हर औरत पाठक अपने–आपको उससे जुड़ा महसूस करती है, अपने जिस्म पर ही हुआ देखती है और हमेशा ऐसा कुछ होता है जो उसी की तरफ आकर रूकता है, और कभी–कभी आँखों के कोनों से झरता भी है। 'कैंडी का फ्रांस में एक्सीडेंट देखो –

शीशे की दीवार की दूसरी ओर टेलीफोन के माऊथ–पीस के पास उसके होंठ हिलते और पिघले हुए शीशे की तरह उसके बोल मेरे रिसीवर में से मेरे कलेजे में उतर जाते। हड्डीयां, मांस पिंघलाते हुए। अपने लहू की सुरल–सुरल में से मुझे गंध आती, जैसे वो सड़–सड़ कर भाप बन कर उड़ रहा हो। उबलते लहू की भाप धुंद आँखें पोंछ कर उस धुंद को पोछने की कोशिश करती। पर वह तो चारों दिशाओं में फैली हुई थी।

(1) ''मावां ते धीयां रल बैठीयां नी माये।*
कोई करदीयां गलोड़ीयां..... ।''
रल बैठीआं ?

गलोड़ीयां ? (कूड़ा–कबाड़ा 224)

1981 में लिखी 'खाना–बदोश' को भारतीय साहित्य अकादमी के पुरूस्कार से निवाज़ा गया, जिसमें सात कांड हैं और सातों कांड हादसों का हजूम, किस्से कयामत के और सफेद और काली हवा की दास्तान हो गये हैं, जिनमें रिश्तों की जज़्बाती टकराव, अकेलेपन की घोर उदासी और मनुष्य के मन की उलझने और संताप को ऐसे हृदय–विदारक अंदाज से ब्यान किया है पाठक हक्का–बक्का रह जाता है और उस की आँखें अजीत कौर के लिखे शब्दों से चुधिंया जाती हैं और दिल चीरा जाता है। वह पूरे का पूरा अजीत कौर के लिखने के विलक्षण प्रकाश के आगे नतमस्तक हो जाता है।

'दर्द ही जिंदगी का आखरी सच है। दर्द और अकेलापन, तुम न तो दर्द बाँट सकते हो और न ही अकेलपन। अपना–अपना दर्द और अपना–अपना अकेलापन हमने अकेले ही भोगना होता है। फर्क सिर्फ इतना है कि अपनी सलीब जब अपने कंधों पर उठा कर हम जिंदगी की गलियों से गुजरे तो हम रो रहे थे? या मुस्कुरा रहे थे? क्या हम अपने जख्मी कंधों पर अपनी मौत के एलान के साथ लोगों की भीड़ों से तरस माँग रहे थे, कि उस हालत में भी उन्हें शहंशाह की तरह मेहर और कर्म के उपहार बाँट रहे थे?''

भाषाई मुहारत, अनुभव की विशालता, लिंग और जाति आधारित दायरों से पार वाली पहुँच, तीक्ष्ण नज़र, मानववादी नज़रीया, समय की सूझ, मनुष्यता का व्यवहार और मनोविज्ञान की गहरी समझ होने के कारण अजीत कौर की गद्य चाहे वह आत्मकथा तो या गद्य पुस्तकें

जैसे 'नीला कुम्हार', 'इधर उधर से', 'नवंबर चुरासी', 'तकीये का पीर' जैसे रेखा–चित्रों या गद्य का हो, मन को ठंडी फुहार सा सकून देती है।

'इधर–उधर से' में अजीत कौर का सशक्त और विशाल ज्ञान पाठकों को अचंभित करने की हद तक ले जाता है।

वर्तमान से लेकर इतिहास के भूतकाल, अपने मुल्क और कुछ दूसरे देशों के और पंजाब प्रदेश के सभ्याचार, पंजाबियत को बचाने की गहरी चिंता, कल्चर का धर्म, देश की आधी आबादी औरतें, दिल्ली डायरी, सोवियत यूनियन की नयी और नम्र धूप, गढ़वाल का कश्मीर पहाड़ के इधर ही कहीं होती थी जिंदगी..... पाठक सोचता है कि यह लेखिका है या खुदा? जो सब कुछ आर–पार देखने के समर्थ है..... जिसकी रूह किसी न किसी के दर्द से जख़्मी रहती है..... जिसे लेखन के साथ ईश्क है, जिसे सच कहने और सच के लिए डट कर खड़े होने पर गर्व महसूस होता है.....।

ऐसी लेखिका पर फिर पाठकों को भी गर्व महसूस होता है, कि वह निडर है और जिसकी कलम धरती जैसी ठोस है। जिसकी कलम में चमक है, जान और जहान है।

'नीला कुम्हार' और 'तकिये का पीर' उनकी ओर से लिखे रेखा–चित्रों की दो पुस्तकें हैं। उसमें उन्होंने देश की कुछ महान हस्तियों के बारे में खुलदिली और खूबसूरती से चित्रण किया है कि उनसे इस बात का अंदाजा लगाया जा सकता है कि वह जब किसी से दोस्ती करती हैं तो उसे कितनी वफा और तनदेही के साथ निभाती हैं और जब किसी की तारीफ करती हैं तो अपने पास कुछ नहीं रखती, बस दिल की सारी दौलत उस पर लुटा देती हैं। यह रेखा–चित्र उन सोलह अज़ीम हस्तियों के साथ मिलाते हैं, जैसे अमृता प्रीतम से लेकर गार्गी खुशवंत सिंह, वी.पी. सिंह, दुग्गल, सोबती, भापा प्रीतम सिंह, बटालवी, बेदी, रंधावा गुरूचरण सिंह, विर्क, सत्यार्थी, योगी हरभजन सिंह, कादरी और पदमा सचदेव। जो दिल–दिमाग को सरशार कर देते हैं, और रूह के राजी होने की वजह–सिर्फ और सिर्फ अजीत कौर की कलम है।

औरत–मर्द के रिश्ते की गर्माहट और जज़्बाती बहाव को अकेलेपन की दम घोटने वाली उदासी और तकलीफ को वह महीन अद्भुत साहस से ब्यान करती है। पर यहाँ यह कहना बहुत ही आवश्यक है कि उसकी कहानियों, नावल और अन्य लेखन को किसी एक

किस्म, औरत–मर्द के संबंधों तक ही सीमित करना जायज़ नहीं। उनका लेखन तो किसी भी हद से मुक्त है। अगर वह औरत–मर्द संबंधों के बारे में निडरता से लिखती है तो राजनैतिक और मुल्क की त्रासदियों और ना–इंसाफियों के बारे में भी प्रचंडता से लिखती है।

''मुझे पता है तुम क्या सोच रहे हो। औरत में घोड़ों की तरह एक सिक्सथ सैंस होती है। तुम सोच रहे हो बिस्तर में तो यह औरत सही है। पर वैसे बिल्कुल बोर है। तुम वैसे प्रोफेसर हो? तुम्हें एक बात समझाऊँ जो औरत बिस्तर में इतनी शिछत से मुहब्बत करेगी तुम्हें, वह बाकि जिंदगी भी शिछत से नहीं जीना चाहती? बिस्तर में तुम मर्दों को आग जैसी औरत चाहिए, बिस्तर से बाहर पालतु पिल्ले जेसे पूँछ हिलाने वाली, ठंडे बर्फ अहसास वाली औरत। जो औरत बिस्तर में आग की तरह तमकेगी, उसका जीने का अंदाज भी यही होगा, यह तुम्हें नहीं सूझा?'' (फालतू और पन्ना 41 से 42)

यह उदाहरण थी औरत–मर्द संबंधों की। अब देखो उसकी कलम जलावतनी के आँसूओं की बाड़ से, तकलीफो से, भूख, गरीबी और अनेकों संघर्षों की बात कैसे करती है, जब वह जर्मनी के ज्ञान चंद के बेटे को मिलने जाती है, ''यह सभी इसी तरह आये है यहां। रोटी रोजी की तलाश में। एजंटों को पैसे देकर। जमीने गहने रख कर, बेच कर। और यहां आकर..... आगे नहीं बोल सका वह। उसके गले में फंसे आसुंओं के संमदर में तुफानी लहरे थीं। जहाज़ों से भी ऊँची जो पूरे के पूरे जहाज़ों को हड़प कर निगल जाती हैं।'' (कसाई वाड़ा पन्ना 43)

एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात, वह कथा–रस की माहिर है। इतनी माहिर कि उसकी दो–तीन मिसालें देना चाहूँगी। कई वर्ष पहले की बात है मेरी बेटी ने पंजगणी होस्टल से वापिस आना था, कई महीनो के बाद। मैं बुक सैल्फ की झाड़–पोंछ कर रही थी तो अजीत कौर की 'खाना–बदोश' को उठा कर मैंने पलोसा, हाथ में उठा कर प्यार से देखा, पता नहीं दुबारा सैल्फ में रखने से पहले कुर्सी पर बैठ उसे खोल कर पढ़ने से अपने आप को मैं रोक नहीं पाई..... जैसे ही पढ़ने लगी, पढ़ती गई कि मेरी बेटी आ गई.....मैं उठ कर उससे मिली..... चाय–पानी पिलाया और फिर से किताब पढ़ने लगी..... मेरी बेटी बहुत हैरान हुई..... ''मैं इतने दिनों बाद आई हूँ और आप किताब ही पढ़े जा रहे हो..... ऐसा क्या है इस किताब में?''

''क्या बताऊँ क्या है इस पुस्तक में..... ''मैं भी नहीं जानती..... बस कुछ है जो दिल में उतर जाता है.....'' मैंने बेटी को गले से लगाते हुए कहा।

दूसरा किस्सा है कि मैं अपनी दोस्त प्रतिभा से दिल्ली बात कर रही थी, उसने बताया कि सुकीरत आया था, अजीत कौर की नई पुस्तक 'इधर–उधर से' देकर गया है, ''यह पुस्तक तो मैं मंगवाने वाली हूँ अपने पुस्तक–विक्रेता जसबीर बेगमपुरी से.....''। मैंने कहा।

''ना मंगवाना, मैं ही भेज दूँगी तुम्हें पढ़ कर। उसने कहा।

कई दिन गुजर गये, मैं इंतजार करती रही, आखिर मैंने प्रतिभा को फोन किया कि पुस्तक भेजी या नहीं? ''मैंने अभी शुरू नहीं की जान–बूझ कर..... पता है मेरे घर कंस्ट्रक्शन का कार्य चल रहा है, मैं सामने खड़ी होकर काम करवा रही हूँ, अगर अजीत कौर की पुस्तक शुरू कर ली तो कैसे ध्यान दे सकूँगी किसी और काम की ओर..... मेरे घर का काम तो चौपट हो जायेगा न.....?''

तीसरा किस्सा इसी वर्ष अप्रैल के आखिर में घटित हुआ जब बड़ी बेटी तो ससुराल चली गई तो छोटी बेटी और मैं ही घर पर थीं, छोटी बेटी अचानक बोली, ''मुझे कुछ दिन आऊट–डोर शूटिंग पर जाना पड़ेगा ममां.....।''

एकदम मुझे लगा मैं कितनी अकेली हो जाऊँगी..... कैसे काटूँगी यह दिन..... कि अचानक मुझे ख्याल आया कि अजीत कौर की नयी किताब लाई थी दिल्ली से, 'नीला कुम्हार' वह पढ़ूंगी। तो मेरा दिल स्थिर हो गया हौंसले में।

उन की कहानियों उसके नावल, उसके लेख, उनका गद्य, उन की आत्म कथा पढ़कर मुझे लगता है कि कितना ऊँचा उनके लिखने का शिल्प..... और डॉ. वनीता ने जब मेरी कहानियों की पुस्तक 'तुम क्यों उदास हो?' पढ़ कर लेख लिखा था जो 2 अक्तूबर 2022 तो पंजाबी ट्रिब्यून में छपा था, उसमें उन्होंने लिखा था ''नारी मन की संवेदनशीलता, करूणा, प्यार के साथ–साथ अकेली औरत की जिम्मेदारियों को कोई तरस के भाव से नहीं ब्यान किया बल्कि मध्य श्रेणी की औरत का अकेलापन, जीवन में पसरे आर्थिक संकट, तनाव, सपनों का बनना ढहना, सामाजिक रोक–टोक औरत का सुहज, तिकोणे रिश्ते का संताप और सबसे बढ़ कर माँ–बाप के भावुक अपनत्व के टूटने के कारण बच्चों के मनोविज्ञान में बनते–टूटते

गल्प को कुलबीर बड़ेसरो ने जितनी शिद्दत से ब्यान किया हे, वह उसे अजीत कौर के लिखने के शिल्प के बहुत नजदीक ले आता है।''

डॉ. विनीता के यह शब्द पढ़ कर मैं सातवें आसमान पर पहुँच गई थी। खुशी में पागल हो गई थी..... पागल तो होना ही था.....उस अजीत कौर के लेखन के शिल्प के नजदीक? जिसके कोई आस–पास भी नहीं हो सकता..... जिन्हें पढ़ कर कोई वह नहीं रह जाता जो वह पहले होता है।

अगर कहीं यह पंजाबी बोली सच हो सके तो मैं सच कर दिखाऊँ..... अपनी अजीतकौर के लिए

(2)*''तेरी आई मैं मर जावा
तेरा वाल की विंगा न होवे।''

*(1)*माँ और बेटीयां मिल कर बैठी*
कर रही मन की बातें
मिल कर बैठी।

(2)*तुम्हारी जाने की बारी आये, तो तुम्हारे बदले मैं मर जांऊ,
तुम्हारा बाल भी बाँका न हो।